Sampreshan
UGC CARE GROUP 1 ISSN: 2347-2979
https://sampreshan.info/
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

समाज-संदर्भित भाषा-चयन का उपयुक्त माध्यम : भाषायी विकल्पन

डॉ. सुजाता चतुर्वेदी
प्रोफ़ेसर, हिंदी
क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर

सारांश

समाजभाषाविज्ञान भाषा को उसके प्रयोक्ता, सामाजिक मानव, के संदर्भ में परिभाषित करता है और उसकी मूल प्रवृत्ति को विषमरूपी मानता है। भाषा की मूल **विषमरूपी प्रवृत्ति** में ही विभेदकता और विकल्पन का गुण समाविष्ट है। भाषा के विषमरूपी होने के सबसे बड़े प्रमाण **भाषाभेद** और **भाषिक विकल्पन** (Linguistic Variation) होते हैं। भाषिक विकल्पन उन भाषिक इकाइयों या तत्वों को कहते हैं जो अलग-अलग सामाजिक संदर्भों में अलग-अलग रूप में आते हैं। भाषायी विकल्पन सामाजिक सांस्कृतिक भाषिक कारणों से परिभाषित होते भी हैं, और उन्हें परिभाषित करते भी हैं। समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार, सांस्कृतिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में अनेक भाषायी विकल्पनों में से उपयुक्त विकल्पन का चुनाव करता है। इसी भाषायी विकल्पन से संबद्ध सिद्धांत हैं भाषायी समता और विभिन्नता के तथा भाषायी अनुरक्षण एवं विचलन के। जहाँ भाषायी समुदाय में व्यक्ति समता और विषमता उपयुक्त भाषायी विकल्पनों द्वारा स्थापित करता है, वहीं भाषायी विकल्पन एवं परिवर्तन द्वारा व्यक्ति भाषायी विचलन करता है और भाषायी अनुरक्षण भी उचित चुनाव द्वारा करता है।

संकेत शब्द – समाजभाषाविज्ञान, भाषाभेद, भाषायी विचलन, भाषायी अनुरक्षण, विषमरूपता

कुछ समय पूर्व तक भाषा का समाज-निरपेक्ष रूप ही भाषाविदों के अध्ययन का केन्द्र रहा। **सस्यूर** ने भाषा-सम्बन्धी अवधारणा प्रस्तुत करते हुए भाषा के दो आयाम बताए- **'भाषा' या लांग (Langue)** और **'वाक्' या परोल (Parole)**। 'भाषा' या लांग भाषा का वह रूप होता है, जो हर बोलने वाले के मस्तिष्क में विद्यमान होता है। इसे **'भाषा व्यवस्था'** भी कहा जा सकता है। दूसरी ओर वाक् या परोल भाषा का प्रयुक्त रूप है। इसे 'प्रयुक्त भाषा' या **'भाषा व्यवहार'** भी कहा जा सकता है। भाषा-व्यवस्था हर व्यक्ति के मस्तिष्क में एक समान ही होती है, इसलिए भाषा-व्यवस्था समरूपी (Homogenous) होती है। किन्तु भाषा-व्यवहार समरूप नहीं हो सकता। वह भिन्न-भिन्न सामाजिक संदर्भों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण विषमरूपी (Heterogeneous) होता है। सस्यूर भाषा-व्यवहार को बहुत महत्व नहीं देते। उनके अनुसार भाषाविज्ञान का मुख्य लक्ष्य समरूपी भाषा व्यवस्था का अध्ययन ही है, भाषा-व्यवहार मात्र गौण या सांयोगिक (Accidental) है। विषमरूपी भाषायी व्यवहार की भूमिका केवल समरूपी 'भाषाव्यवस्था' को व्यंजित करने तक ही सीमित है।

सस्यूर के 'लांग' व 'परोल' के समानांतर ही **चोम्स्की** की **'भाषिक क्षमता' (Competence)** और **'भाषिक व्यवहार' या 'दक्षता' (Performance)** को संकल्पनाएँ हैं। उनके अनुसार 'भाषिक क्षमता' भाषा व्यवस्था का मनुष्य के मस्तिष्क में अवस्थित वह ज्ञान है, जिसकी सहायता से व्यक्ति भाषा को बोलने-समझने में समर्थ होता है। 'भाषिक व्यवहार' इसी अंतर्हित ज्ञान का वास्तविक स्थितियों में प्रयोग है। भाषिक क्षमता की सत्ता मानसिक होती है, तो 'भाषिक

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1 ISSN: 2347-2979
https://sampreshan.info/
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

व्यवहार' की सत्ता भौतिक होती है। चूँकि 'भाषिक क्षमता' सामाजिक संदर्भों में प्रयुक्त होती है, अतः वह समरूपी होती है। सस्यूर के समान ही चोम्स्की ने भी 'भाषिक क्षमता' को ही अध्ययन का मुख्य केन्द्र माना। उनके अनुसार 'भाषिक व्यवहार' तो 'भाषिक क्षमता' का मात्र विकृत (Degenerated) रूप है और वह 'भाषिक क्षमता' तक पहुँचने का साधन मात्र है। इस प्रकार भाषा के समरूपी रूप को ही महत्व दिया जाता रहा है।

भाषाविज्ञान के अध्ययन में और भाषा की समरूपता की मान्यता में पिछले कुछ वर्षों से बहुत परिवर्तन आया है। शुद्ध भाषावैज्ञानिक भाषा को मूलतः समरूपी मानते हैं, इसीलिए वे भाषा के सार्वभौमिक व्याकरण की रचना को संभव मानते हैं। इसके विपरीत दूसरी दृष्टि भाषा को उसके प्रयोक्ता, सामाजिक मानव, के सन्दर्भ में परिभाषित करती है । ऐसे भाषावैज्ञानिक भाषा को आतंरिक मन तथा बाह्य संदर्भों के द्वंद्व के परिणामस्वरूप आविर्भूत प्रतीक-व्यवस्था मानते हैं । इसीलिए उनके अनुसार भाषा भी अपने प्रकृत रूप में विषमरूपी होती है । अब भाषा के विषमरूपी रूप को अधिक महत्व प्रदान किया जाने लगा है। इस धारा के विद्वानों के अनुसार 'भाषिक क्षमता' और 'भाषिक व्यवहार' दोनों की ही सत्ता मानसिक होती है। ऐसी स्थिति में भाषा की समरूपता भी अमूर्त और कल्पित है। लोगों के भाषा व्यवहार में जितने भाषाभेद दिखायी देते हैं और सामाजिक संदर्भ के आधार पर लोग जिस प्रकार इन भाषाभेदों में से एक भेद का चयन करके उसका प्रयोग करते हैं, उसे देखते हुए उपर्युक्त धारा के भाषाविद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भाषा की प्रवृत्ति मूलतः **विषमरूपी** होती है। साथ ही विभिन्न सामाजिक स्थितियों में किसी भाषा के जितने रूपों का प्रयोग होगा, भाषा का व्याकरण भी उतने ही व्याकरणों का समूह होगा। किन्तु इस धारा ने 'भाषिक क्षमता' के स्वरूप और महत्व को नकारा भी नहीं है। इसके अनुसार केवल अमूर्त के आधार पर किया गया भाषा-विश्लेषण अवास्तविक, अधूरा और अवैज्ञानिक होगा ।

भाषा के विषमरूपी होने के सबसे बड़े प्रमाण **भाषाभेद** और **भाषिक विकल्पन** (Linguistic Variation) होते हैं। भाषिक विकल्पन उन भाषिक इकाइयों या तत्वों को कहते हैं जो अलग-अलग सामाजिक संदर्भों में अलग-अलग रूप में आते हैं। उदाहरणार्थ- 'समय' शब्द के लिए हिंदी भाषी समुदाय में विभिन्न विकल्पनों का प्रयोग होता है- यथा:

(क) क्या **वक्त** हुआ है ?

(ख) क्या **समय** हुआ है ?

(ग) क्या **टाइम** हुआ है ?

(घ) कितने **बजे** हैं? कितना **बजा** है ?

इस प्रकार भाषा को समाज से सम्बद्ध करने वाली धारा **'समाजभाषाविज्ञान'** के उद्भव और विकास के पूर्व भाषिक व्यवहार की विषमरूपता को यादृच्छिक और अव्यवस्थित कहा जाता था। इसीलिए वर्णनात्मक और संरचनात्मक भाषाविज्ञान को भाषा व्यवहार में एकरूपता और व्यवस्था नहीं दिखाई दी, क्योंकि इसने भाषा को उन संदर्भों से काटकर देखा, जो संदर्भ भाषा

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1 ISSN: 2347-2979
https://sampreshan.info/
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

में विविधता और विकल्पन और इसके फलस्वरूप विषमरूपता लाते हैं। भाषिक विकल्पनों को जब समाज के संदर्भ में रखकर देखा जाता है, तो भाषा की विषमरूपता भी सुव्यवस्थित और नियमबद्ध दिखाई देती है। उदाहरणस्वरूप – मध्यम पुरुष एकवचन के लिए हिंदी में कभी 'तू' कभी 'तुम' और कभी 'आप' सर्वनाम शब्दों का प्रयोग होता है, वे श्रोता की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, उसकी आयु, वक्ता और श्रोता का सम्बन्ध, आदि सब बताते हैं। अतः वे संदर्भ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार समाज में प्रयुक्त विभिन्न संबोधन–शब्दावली एवं सर्वनाम–प्रयोग जहाँ वक्ता–श्रोता की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, पारिवारिक स्थिति व सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हैं, वहीं ये विभिन्न भाषिक विकल्पन और उसके सामाजिक संदर्भों को भी प्रस्तुत करते हैं। साथ ही दोनों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध एक–दूसरे को परिवर्तित प्रभावित करने की क्षमता को भी संकेतित करते हैं।

भाषा की मूल **विषमरूपी प्रवृत्ति** में ही विभेदकता और विकल्पन का गुण समाविष्ट है। भाषायी समुदाय, उनके विभिन्न भाषायी कोड और भाषायी कोश के भीतर प्राप्त विकल्पन ही आज 'भाषा' के वास्तविक स्वरूप को परिभाषित करते हैं। *ब्लाउंट और सैंचेज* के अनुसार *"विकल्पन भाषा परिवर्तन के लिए अनिवार्य है, क्योंकि उसी के आधार पर सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा महत्वपूर्ण सामाजिक आयामों एवं भेदों को उत्पन्न किया जाता है, जैसे मानवजातीय/नृजातीय पहचान, स्तरविन्यास, समुदाय सदस्यता और व्यक्तिगत पहचान।"* ***(1)***

व्यक्तिपरक विकल्पन भाषा के लगभग सभी स्तरों पर प्राप्त होता है। और यह सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भिन्नता से सम्बन्धित होता है। उदाहरणार्थ रंग शब्दावली एक ही भाषायी समुदाय में भिन्न होती है। 'बैंगनी' के लिए कोई 'बैंगनी' कोई 'जामुनी' प्रयुक्त करता है, तो 'हरे' रंग के लिए 'हरा' ' तोतई' 'काहिया 'मेंहदी' आदि विकल्पन प्रयुक्त होते हैं।

समाजभाषिक विकल्पन और सामाजिक संदर्भ के अंतःसम्बन्ध को लेकर सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया गया है– **विलियम लेबॉव** द्वारा। लेबॉव ने अंग्रेज़ी भाषा के विकल्पनों के प्रयोग का न्यूयार्क (New York city) के संदर्भ में अध्ययन किया। ***(2)*** लेबॉव ने विशिष्ट भाषायी परिवर्तों (Linguistic variables) को लेकर पहले उनका अध्ययन भाषिक संदर्भों में किया, उसके बाद भाषिक समुदाय में उनके वितरण के अनुसार उनका सम्बन्ध वक्ता और स्थिति से दिखाया। लेबॉव के अनुसार व्यक्तिबोली में आन्तरिक संगति (Internal consistency) सम्पूर्ण भाषिक समुदाय की अपेक्षा में कम होती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिबोली में विकल्पनों के अलग–अलग स्तर और समूहों का प्रयोग होता है। अतः भाषिक समुदाय की व्यक्तिबोली समझने के लिए उन विकल्पनों के समस्त प्रकारों से अवगत होना आवश्यक है। इसके विपरीत केवल एक भाषायी समुदाय में सामान्यतः सर्वप्रयुक्त विकल्पन ही उभर कर आते हैं। लेबॉव ने भाषिक समुदाय में प्रयुक्त विभिन्न विकल्पनों के अध्ययन हेतु दो विधियों का उल्लेख किया है। प्रथम विधि के अन्तर्गत भाषिक परिवर्तों को लेकर उनके सामाजिक वितरण का अध्ययन किया जा सकता है। द्वितीय विधि में विशिष्ट व्यक्ति या विशिष्ट स्थिति के संदर्भ में भाषिक व्यवहार (Language choice) निर्धारित किया जा सकता है। इसके साथ समाजभाषावैज्ञानिक नियम (Sociolinguistic rules) इन भाषायी विकल्पनों के मध्य से भाषायी चुनाव करने में सहायक सिद्ध होते हैं। ये नियम सामाजिक संदर्भ, व्यवहार–क्षेत्र, सामाजिक स्थिति,

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1 ISSN: 2347-2979
https://sampreshan.info/
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

विषय आदि के अनुसार भाषिक विकल्पन के चुनाव में सहायक होते हैं। इस प्रकार भाषिक व्यवहार में भाषिक विकल्पन के भाषिक चुनाव के संदर्भ में लेबॉव की मान्यता को निम्न चित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों, स्थान, विषय के माध्यम से विभिन्न सामाजिक स्थितियों में प्रयुक्त भाषायी विकल्पों और कोडों को परिभाषित किया है :-

लेबॉव की मान्यतानुसार भाषिक विकल्पन के चुनाव से संबद्ध चित्र

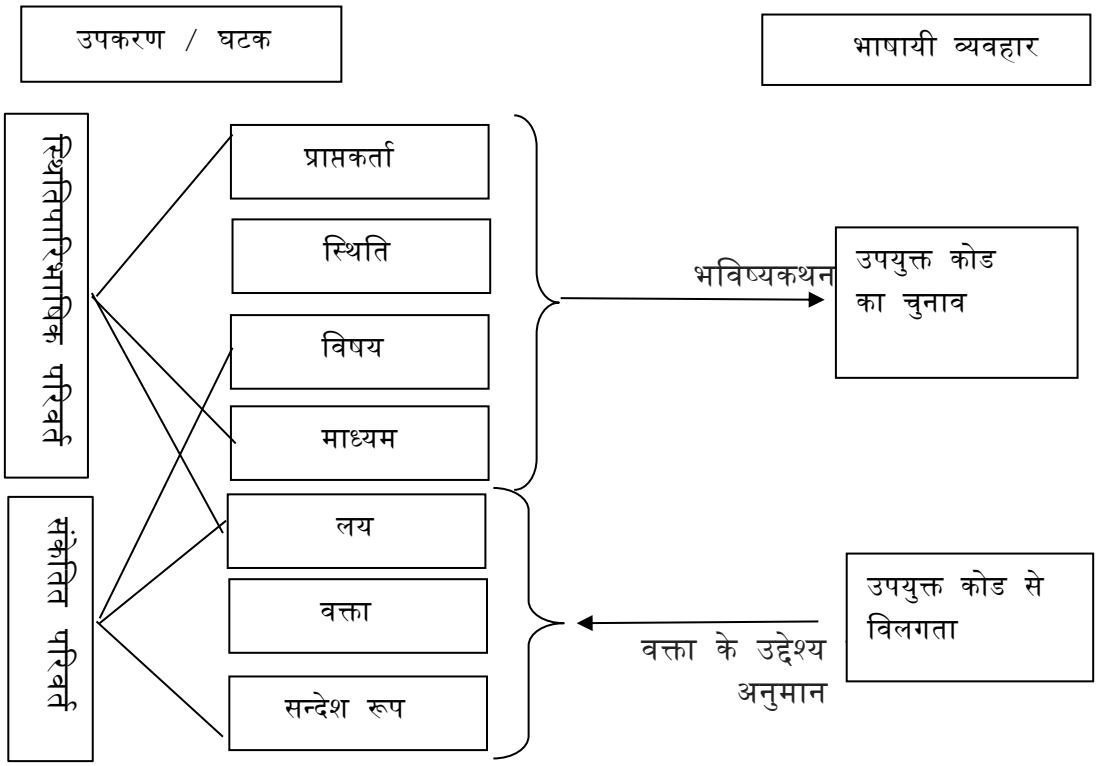

लेबॉव ने **समाजभाषिक विकल्पन** के मुख्य रूप से दो प्रकार बताए हैं -

समाजभौगोलिक विकल्पन- किसी भाषायी समाज में प्रचलित विकल्पनों में से कुछ यदि किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में बोले जाते हों और उस भौगोलिक क्षेत्र के लोगों के दूसरे भाषायी समाज में आकर रहने के कारण स्थानीय विकल्पनों के साथ बाह्य विकल्पनों का भी प्रयोग होने लगे, तो ऐसे विकल्पनों को समाजभौगोलिक विकल्पन कहते हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में विभिन्न सब्जियों के लिए प्रयुक्त भिन्न-भिन्न विकल्पनों का प्रयोग 'लौकी-घीया', 'कद्दू -काशीफल' आदि। इनमें से पहले शब्द-लौकी, कद्दू पूर्वी उत्तर प्रदेश में बोले जाते हैं। पूर्वी उत्तरप्रदेश या भोजपुरी प्रदेश से आकर दिल्ली में बसने वाले लोगों के साथ ही ये शब्द यहाँ आए हैं।

विशुद्ध सामाजिक विकल्पन- वे विकल्पन जिनको किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र से नहीं जोड़ा जा सकता और जो भाषायी समाज के भीतर ही उत्पन्न हों, उन्हें विशुद्ध सामाजिक विकल्पन कहते हैं, यथा- 'मैंने काम किया/ करा', 'ज-ज़' 'जरा-ज़रा' 'जोर-ज़ोर 'जहर-ज़हर' आदि।

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1 ISSN: 2347-2979
https://sampreshan.info/
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

इस प्रकार समाजभाषिक विकल्पन भाषा के किसी भी स्तर पर देखे जा सकते हैं। चाहे वह **ध्वनि** हो (फ-फ़, फैसला-फ़ैसला, फोन, फोन); **शब्द** हो (आटा गूंधना/सानना/मलना/रौंधना), (पानी बिखेरना, गिराना, फैलाना आदि); **रूप** हो (मुझे/मेरे को/मैंने/मुझको जाना है/हैगा) अथवा फिर **वाक्य** हो (चलूँगा तो लेकिन अभी नहीं) ।

भाषायी विकल्पन को तीन आयामों में बाँट कर अध्ययन किया जा सकता है:- भौगोलिक, सामाजिक व शैलीपरक । **भौगोलिक विकल्पन** क्षेत्र-विशेष से सम्बन्ध रखते हैं, **सामाजिक विकल्पन** वक्ता/श्रोता की सामाजिक सत्ता से सम्बद्ध होते हैं और **शैलीपरक विकल्पन** सामाजिक संदर्भ के अन्य विभिन्न घटकों से सम्बन्धित होते हैं - यथा व्यवहार-क्षेत्र, स्थिति विशेष, विषय विशेष इत्यादि । भाषा द्वैत और द्विभाषिकता की स्थिति भी इन्हीं विकल्पनों के विविध प्रयोगों द्वारा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ भारत में उच्चवर्गीय ब्राह्मणों और जनसाधारण की भाषा-शैली के बीच बहुत अन्तर होता था ।

यह भी ध्यातव्य है कि भाषायी परिवर्तन की दिशा में निम्न सामाजिक वर्ग ही पहले अग्रसर होते हैं। वे अपने उच्च वर्ग की भाषा को अनुकरण द्वारा अपना कर अपना स्तर उनके उच्च स्तर तक पहुँचाना चाहते हैं। दूसरी ओर, यह भी मान्यता है कि आमतौर पर भाषिक परिवर्तन उच्च वर्ग द्वारा ही आरम्भ किए जाते हैं, जिससे कि वे निम्न वर्ग से स्वयं को 'प्रतिष्ठा-सूचक भेदों' द्वारा भिन्न रख सकें।

फिशमैन ने भाषायी विकल्पन के संदर्भ में समता (Uniformity) और विषमता (Differentiation) के विषय में बात की है ***(3)*** । उनके अनुसार भाषायी स्तर पर समता और विभिन्नता साथ-साथ दिखायी देते हैं। समता अर्थात् भाषायी और सामाजिक व्यवहार में एकरूपता और विभिन्नता अर्थात् भाषायी एवं सामाजिक व्यवहार में विषमरूपता । फिशमैन के अनुसार भाषा में समता और विभिन्नता दोनों के मेल से ही विभिन्न भाषायी विकल्पनों का प्रयोग समाज के सामने खुल जाता है। किसी भाषायी समुदाय के भाषायी कोश के भीतर कुछ नई प्रवृत्तियों का उद्भव समता के कारण होता है, जो उस समुदाय के भीतर संप्रेषण में और अधिक सहायक होती हैं। दूसरी ओर स्कूल, सरकार और उद्योग के व्यवहार-क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा विभिन्नता से प्रभावित होकर इन व्यवहार-क्षेत्रों में अंतःक्रिया (Interaction) के आधार पर अपनायी जाती है। शहरीकरण (Urbanization) द्वारा भी विभिन्नता का पोषण होता है। शहरीकरण की प्रवृत्ति के कारण विशिष्ट भाषायी समुदायों और नृजातीय (ethnic) समुदायों की संख्या कम होने लगती है। औद्योगीकरण की उन्नति के कारण नवीन सामाजिक स्तरों और वर्गों का निर्माण होता है। ये वर्ग फिर अपनी विशिष्ट सामाजिक भाषा और भाषायी कोश का निर्माण करते हैं। इस प्रकार आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया के रूप में उभरती है।

इसी संदर्भ में भाषा में परिवर्तन की स्थिति फिशमैन ने **भाषायी अनुरक्षण** (Language maintenance) और **भाषायी विचलन** (Language shift) के माध्यम से प्रस्तुत की है। यह स्पष्ट है कि भाषा में विभिन्नता सामाजिक दूरी और वर्गीकरण को प्रतिबिम्बित करती है। इसके साथ ही सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों द्वारा विभिन्न भाषायी समुदायों के भाषायी कोश में **भाषायी विचलन** उत्पन्न होता है। इस प्रकार भाषायी अनुरक्षण और भाषायी

विचलन के सिद्धान्तों का सम्बन्ध मुख्यतः भाषा प्रयोग में होने वाले परिवर्तनों और साथ ही बहुभाषिक भाषा–समुदायों में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं में होता है। भाषायी विचलन के संदर्भ में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट होता है। जहाँ अन्य भाषा के सम्पर्क में आने से पूर्व शिक्षण प्राप्त किया जा चुका हो, उस स्थिति में अन्य भाषा में व्यक्ति वार्ता करना तो अपेक्षाकृत शीघ्र सीख लेता है, किन्तु उसके अन्य भाषा के लेखन, पठन, अर्जन में मातृभाषा शिक्षण बाधा उत्पन्न करता है। अतः ऐसी स्थिति में भाषायी विचलन बहुत सरल नहीं होता। इसके विपरीत जिन स्थितियों में अन्य भाषा से सम्पर्क के फलस्वरूप उसी अन्य भाषा में शिक्षा प्राप्त की गई हो, उन स्थितियों में वह अन्य भाषा मातृभाषा के अर्जन में बाधक हो जाती है।

भाषायी अनुरक्षण किसी भाषायी समुदाय की भाषायी निष्ठा अथवा समुदाय विशेष के प्रति निष्ठा, जैसे राष्ट्रीयता की भावना, का फल होता है। इस प्रकार भाषायी अनुरक्षण मुख्यतः उन्हीं समुदायों में प्राप्त होता है, जो अपनी वास्तविक ज़मीन से तो उखड़ गए हों, किन्तु विस्थापित होने पर भी अपनी भाषा और समुदाय के प्रति अत्यधिक निष्ठावान हों। दूसरी ओर ऐसा भी देखने में आया है कि शहरी परिवेश में रहने वाले लोग भाषायी विचलन की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं। इसके विपरीत ग्रामीण लोग जो अधिक रूढ़िवादी और होते हैं, वे भाषायी विचलन की प्रवृत्ति की ओर कम झुकते हैं। इसके साथ ही फिशमैन यह भी कहते हैं कि जहाँ ग्रामीण समुदाय अपेक्षाकृत अधिक परम्परागत और स्वयंपूर्ण भाषायी रूपों को सहेज कर रख सके हैं, वहीं दूसरी ओर शहरी समुदाय परिवर्तन की ओर अधिक उन्मुख होता है। यही शहरी समुदाय अधिक सक्रिय, संगठित और नूतन प्रयासों द्वारा परम्परावादी भाषा को सहेजने, जागृत करने या परिवर्तित करने की सर्वाधिक चेष्टा करते हैं। ***(4)*** इसके साथ भी भाषायी विचलन व अनुरक्षण से जुड़ा हुआ प्रश्न है **प्रतिष्ठा** का । समुदाय में अधिक प्रतिष्ठा–सूचक भाषा निश्चय ही कम प्रतिष्ठा–सूचक भाषा का स्थान ले लेती है। इससे पूरे समुदाय की भाषायी प्रवृत्ति में विचलन होता है। उदाहरण के लिए भारत में अंग्रेज़ी भाषा प्रतिष्ठासूचक मानी जाती है और लगभग सभी शहरी परिवेशों में अंग्रेज़ी भाषा हिंदी भाषा का स्थान बहुत सारे संदर्भों में लेती रही है।

अंततः भाषायी विकल्पन सामाजिक सांस्कृतिक भाषिक कारणों से परिभाषित होता भी है, और उन्हें परिभाषित करता भी है। समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार, सांस्कृतिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में अनेक भाषायी विकल्पनों में से उपयुक्त विकल्पन का चुनाव करता है। बहुत सीमा तक यह भाषायी चुनाव अपने मानसिक व शैक्षिक स्तर, आयु, सामाजिक स्तर, वर्ग सम्बन्धों पर निर्भर करता है। इसी भाषायी विकल्पन से संबद्ध सिद्धांत हैं भाषायी समता और विभिन्नता के तथा भाषायी अनुरक्षण एवं विचलन के। जहाँ भाषायी समुदाय में व्यक्ति समता और विषमता उपयुक्त भाषायी विकल्पनों द्वारा स्थापित करता है, वहीं भाषायी विकल्पन एवं परिवर्तन द्वारा व्यक्ति भाषायी विचलन करता है और भाषायी अनुरक्षण भी उचित चुनाव द्वारा करता है। वस्तुतः भाषिक प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्ति सही भाषिक विकल्पन के उपयुक्त चुनाव द्वारा या तो पूरे समाज के साथ संगठित रूप से रह सकता है, अथवा विघटित होकर एकाकी भी हो सकता है।

संदर्भ

1) Variation is in fact essential for language change, since it provides the material upon which social processes operate to produce significant social dimensions and categories such as ethnic identification, stratification group membership and individual identifications. Ben G. Blount and Mary Sanches (ed.), Sociocultural Dimensions of Language Change, pg. 5.
2) William Labov, The Social stratification of English in New York City.
3) Joshua A. Fishman, The Sociology of Language.
4) Thus whereas small rural groups may have been more successful in establishing relatively self-contained traditional interaction patterns and social structures, yet urban groups, exposed to interaction in more fragmented and specialised networks, may reveal more conscious organised and novel attempts that serve or revive or change their traditional language and revived environment does facilitate change. Joshua A. Fishman, The Sociology of Language, in Current Trends in Linguistics, pg. 1715, vol. 12, (ed.) T.A. Sebeok.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) रामविलास शर्मा, 'भाषा और समाज', नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1977
2) रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव तथा रमानाथ सहाय (सं.), 'हिंदी का सामाजिक संदर्भ', आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, 1976
3) विश्वनाथ प्रसाद, 'भाषा' (ब्लूमफील्ड कृत 'लैंग्वेज' का हिंदी अनुवाद), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1968
4) Blount, B.G. and Sanches, M. (eds.), 'Sociocultural Dimensions of Language Changes', New York, Academic Press, 1948
5) Bright, W. (ed.), 'Sociolinguistics', The Hague, Mouton, 1966
6) Giglioli, P.P. (ed.), 'Language and Social Context', London, Penguin, 1972
7) Labov, W., 'The Social Stratification of English in New York City', Washington, Centre for Applied Linguistics, 1966
8) Pride, J. B., 'The Social Meaning of Language', London, Oxford University Press, London, 1971
9) Sebeok, T.A. (ed.), 'Current Trends in Linguistics', Vol. 12 "Linguistics and Adjacent Arts and Sciences', The Hague, Mouton, 1974
10) Trudgill, P., 'Sociolinguistics: An Introduction', Harmondsworth, Penguin, 1974

लेखक संपर्क :-

डॉ. सुजाता चतुर्वेदी
प्रोफ़ेसर, हिंदी
क्राइस्ट चर्च कॉलेज,
कानपुर
ईमेल : sujlay@gmail.com